तिथि–10 मई 2021
सृष्टि संवत्- १, ९६, ०८, ५३, १२२
युगाब्द-५१२२, अंक-१३८, वर्ष-१४
वैशाख विक्रमी २०७८ (मई 2021)
मुख्य संपादक : हनुमत्प्रसाद 'अथर्ववेदाचार्य'
कार्यकारी संपादक : आचार्य सतीश
सम्पर्क सूत्र: 9350945482
Web: www.aryanirmatrisabha.com
E-mail : krinvantovishwaryam@gmail.com

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा

ऋषि दयानन्द

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

(राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा का मासिक विचार पत्र)

आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः। यदुत्पतन् वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥

–ऋ० २। ८। १२। ३॥

व्याख्यान–(आवदंस्त्वं शकुने) हे (शकुने) जगदीश्वर! आप (भद्रम्) कल्याण का भी कल्याण अर्थात् व्यावहारिक सुख के भी ऊपर मोक्षसुख का निरन्तर उपदेश सब जीवों को कीजिए। (तूष्णीमासीनः) हे अन्तर्यामिन् ! हमारे हृदय में सदा स्थिर हो मौन से ही (सुमतिम्) सर्वोत्तम ज्ञान देओ। (चिकिद्धि नः) कृपा से हमको अपने रहने के लिए घर ही बनाओ। और आप की परमविद्या को हम प्राप्त हों। (यदुत्पतन्) उत्तम व्यवहार में पहुँचाते हुए आप का (यथा) जिस प्रकार से (कर्करिर्वदसि) कर्त्तव्य कर्म, धर्म को ही अत्यन्त पुरुषार्थ से करो, अकर्त्तव्य दुष्ट कर्म मत करो मत करो, ऐसा उपदेश है कि पुरुषार्थ, अर्थात् यथायोग्य उद्यम को कभी कोई मत छोड़ो। जैसे (बृहद्वदेम विदथे॰) विज्ञानादि यज्ञ वा धर्मयुक्त युद्धों में 'सुवीराः' अत्यन्त शूरवीर होके 'बृहत्' (सबसे बड़े) आप जो परब्रह्म उन (वदेम) आप की स्तुति, आप का उपदेश, आप की प्रार्थना और उपासना, तथा आपका यहा बड़ा अखण्ड साम्राज्य और सब मनुष्यों का हित सर्वदा कहें-सुनें, और आपके अनुग्रह से परमानन्द को भोगें ।।

सम्पादकीय

कोरोना-संकट

पिछले एक वर्ष से भी अधिक समय से संसारभर में ही लोगों का जीवन अस्त-व्यस्त है। जीवन के हर क्षेत्र को इस महामारी ने प्रभावित किया है। बालकों की शिक्षा, बड़ों की जीविका, सामान्य व्यक्ति की दिनचर्या से लेकर पूरा सामाजिक ताना-बाना व पूरे के पूरे राष्ट्रों का जीवन इससे प्रभावित हुआ है। करोड़ों लोग रोग की चपेट में आये हैं तथा लाखों लोगों की जीवन-लीला ही समाप्त हो गई। हमारे अपने देश मं भी पिछले वर्ष से यही स्थिति है।

इसी बीच ऐसी भी सूचनाएँ आ रही हैं कि यह कोई प्राकृतिक महामारी नहीं अपितु चीन के द्वारा तैयार किया गया जैविक हथियार है। जबकि दूसरी ओर इसे प्राकृतिक रोग मानकर ही इससे निपटने का प्रयास संसार भर के वैज्ञानिकों और चिकित्सकों द्वारा किया जा रहा है। वर्तमान में सबका लक्ष्य भी यही है कि इस आपदा को समाप्त किया जाए। यह प्राकृतिक है या मानव निर्मित है इसकी तो खोजबीन चलती ही रहेगी। हो सकता है भविष्य में इसका निर्णय हो जाए और यह भी हो सकता है कि किसी निर्णय पर पहुंचा ही न जा सके और सभी पक्ष अपने-अपने आग्रह पर डटे रहें। विश्व की अनेक घटनाओं के साथ ऐसा होता है। लेकिन वर्तमान का समय इस आपदा से जुझने का है, इससे बाहर निकलने का है, इसको परास्त करने का है।

इसी दिशा में सभी लोग लगे हुए हैं। अगर हम अपने ही देश में देखें तो चिकित्सा के क्षेत्र में लगे वे सभी लोग अपना योगदान दे रहे हैं जो भी मनुष्य के स्वास्थ्य को ठीक रखने का कार्य करते हैं, चाहे वे एलोपेथी के चिकित्सक हों, आयुर्वेद के वैद्य हों, होम्योपेथ हों या अन्य किसी भी चिकित्सा पद्धति को जानते हों। सभी अपने-अपने ढंग से कोरोना से पीड़ित लोगों की चिकित्सा में लगे हैं। हाँ, यह भी निश्चित है कि वर्तमान समय में किसी भी विधि से इसका सटीक ईलाज सम्भव नहीं है। सभी वैकल्पिक चिकित्सा कर रहे हैं। सभी प्रयास कर रहे हैं और सभी के प्रयास को सराहा जाना चाहिए। हाँ सबसे अधिक लोग

शेष अगले पृष्ठ पर ....

पिछले पृष्ठ का शेष .... ऐलोपेथी का सहारा ले रहे हैं, वह इतने बोझ को सहन नहीं कर पा रहा है और कोई भी व्यवस्था उसको झेल भी नहीं सकती है।

पिछले वर्ष के मुकाबले इस वर्ष स्थिति ज्यादा भयंकर रूप धारण किए हुए है। ऐसी परिस्थितियाँ क्यों उत्पन्न हुई। महामारी की पहली लहर में भी लाखों लोग मारे गए और करोड़ों लोग संक्रमित हुए। थोड़ी सी राहत मिली तो देश की सरकार ने अपनी वाह-वाही की इच्छा में ऐसी तस्वीर प्रस्तुत की जैसे उसने अपने प्रयासों से रोग को परास्त कर दिया है। सरकार ने विजयी मुद्रा अपनाकर एक अति आत्म विश्वास का भाव उत्पन्न किया। दूसरे देशों की स्थिति का आकलन न करके अपने को विजयी घोषित कर दिया। यही भाव धीरे-धीरे आमजन तक पहुंच गया। सभी कुछ सामान्य कर देने का प्रयास शुरु कर दिया। चुनाव पर चुनाव और बिहार चुनाव के बाद तो सरकार और अधिक आत्मविश्वास से भर गई। बड़े-बड़े आयोजन न केवल सरकारी स्तर पर अपितु सामाजिक स्तर पर भी आयोजित होते रहे। इसी कड़ी में सामान्य लोगों ने भी अपना योगदान दिया और रोग की पूर्ण समाप्ति की प्रतीक्षा किए बिना सभी कार्यक्रमों जैसे विवाहादि में पूर्व व्यवहार प्रारम्भ कर दिया। इसी काल में दूसरे कई देशों में हा-हाकार मचा हुआ था और हमारे विशेषज्ञ उससे आंख बन्द कर अपनी पीठ थपथपाने में व्यस्त थे। न सरकारों द्वारा चेतावनी दी गई न सरकारी स्तर पर ऐसी व्यवस्थाएं की गई जिससे आने वाले खतरे से निपटा जा सके। एक लापरवाही का वातावरण देश के सर्वोच्च पदों पर बैठे व्यक्तियों से लेकर सामान्य व्यक्ति तक बन गया। उसी का परिणाम रहा कि जब स्थिति उत्पन्न हुई तो न सरकारों के पास साधन थे, न तैयारी थी, न सम्भलने का समय। सुविधाएँ पहले से भी कम हो चुकी थी।

इसी वातारण में भयंकर स्थिति उत्पनन हुई। जो ग्रामीण क्षेत्र अब तक इसे एक शहरी बिमारी मानकर पिछली बार की सुरक्षा को छोड़कर निश्चित हुआ बैठा था, वह भी उसकी चपेट में आ गया। आज हमारे अनेक गांव बीमारी से ग्रस्त हैं, सुविधाओं का अभाव पहले से है, ऐसी स्थिति में वे पूरी तरह से असहाय नजर आ रहे हैं।

ऐसी परिस्थिति में हर प्रकार के संसाधन, सभी उपलब्ध साधनों का प्रयोग आवश्यक है। जो हमारी देशी चिकित्सा पद्धतियां हैं वे भी सब लोगों तक उपलब्ध नहीं है। पिछले अनेक वर्षों से केवल एक प्रकार की चिकित्सा पर निर्भर रहना, उसके लिए सरकारों द्वारा धन की व्यवस्था करना, उसी को बढ़ावा देना, अन्यों की उपेक्षा, संसाधनों की कमी होना और उनका प्रचार-प्रसार न होने से वे वैकल्पिक पद्धतियां (आयुर्वेद, होम्योपैथ आदि) लोगों के परिज्ञान से दूर हो गई। संकटकाल में सभी का प्रयास सफलता दिलाता है।

आर्यों/आर्याओं वर्तमान में आवश्यकता रोग से बचने की, लोगों को बचाने की है। जिस प्रकार से भी इसके प्रभाव को कम किया जा सके वे सभी तरीके अपनाए जा सकते हैं। लोगों को निर्देशों का पालन करना चाहिए। देश के वैज्ञानिकों के निर्देशों का पालन करते रहें। सभी प्रश्नों पर एक लेख में चर्चा सम्भव नहीं है। हम सब के लिए आवश्यक है कि हम अपने आहार-विहार, आचार-विचार को, अपनी दिनचर्या को अपनी परम्पराओं के अनुसार बनाकर चलें। यम-नियमों के पालन पर पूरा ध्यान दें। साथ ही वर्तमान परिस्थितियों को भी ध्यान में रखकर पूर्ण संवदेनशीलता के साथ हर सम्भव तरीके से अपना बचाव करते रहें। पूर्ण संवेदनशीलता के साथ हमारे चारों ओर जो परिस्थितियाँ बनी हुई हैं, उनमें लोगों को यथा-सम्भव सहयोग करते रहें। संकट काल में संवेदनहीन न होकर दुखी व पीड़ितों के साथ पूर्ण सहानुभूति बनाकर रखें। उन्हें सहायता पहुंचाने का कार्य करते रहें। यही आशा है कि शीघ्र ही ये परिस्थितियाँ बदलेंगी, स्थितियाँ समान्य भी होंगी, फिर पहले सा जीवन होगा। हम सब मिलकर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ेंगे।

-आचार्य सतीश

28 अप्रैल-26 मई 2021 **वैशाख** ऋतु- ग्रीष्म

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
		विशाखा कृष्ण द्वितीया 28 अप्रैल	अनुराधा कृष्ण तृतीया 29 अप्रैल	ज्येष्ठा कृष्ण चतुर्थी 30 अप्रैल	मूल कृष्ण पंचमी 1 मई	पूर्वाषाढ़ा कृष्ण षष्ठी 2 मई
उत्तराषाढ़ा कृष्ण सप्तमी 3 मई	श्रवण कृष्ण अष्टमी 4 मई	धनिष्ठा कृष्ण नवमी 5 मई	शतभिषा कृष्ण दशमी 6 मई	पूर्वाभाद्रपदा कृष्ण एकादशी 7 मई	उत्तराभाद्रपदा कृष्ण द्वादशी 8 मई	रेवती कृष्ण त्रयोदशी 9 मई
अश्विनी कृष्ण चतुर्दशी 10 मई	भरणी कृष्ण अमावस्या 11 मई	कृतिका शुक्ल प्रतिपदा 12 मई	रोहिणी शुक्ल द्वितीया 13 मई	मृगशिरा शुक्ल तृतीया 14 मई	मृगशिरा शुक्ल तृतीया 15 मई	आर्द्रा शुक्ल चतुर्थी 16 मई
पुनर्वसु शुक्ल पंचमी 17 मई	पुष्य शुक्ल षष्ठी 18 मई	आश्लेषा शुक्ल सप्तमी 19 मई	मघा शुक्ल अष्टमी 20 मई	पू॰ फाल्गुनी शुक्ल नवमी 21 मई	उ॰ फाल्गुनी शुक्ल दशमी 22 मई	हस्त शुक्ल एकादशी/द्वादशी 23 मई
चित्रा शुक्ल त्रयोदशी 24 मई	स्वाती/विशाखा शुक्ल चतुर्दशी 25 मई	अनुराधा शुक्ल पूर्णिमा 26 मई				

27 मई- 24 जून 2021 **ज्येष्ठ** ऋतु- ग्रीष्म

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
			ज्येष्ठा कृष्ण प्रतिपदा 27 मई	मूल कृष्ण द्वितीया 28 मई	पूर्वाषाढ़ा कृष्ण तृतीया/चतुर्थी 29 मई	उत्तराषाढ़ा कृष्ण पंचमी 30 मई
श्रवण कृष्ण षष्ठी 31 मई	धनिष्ठा कृष्ण सप्तमी 1 जून	शतभिषा कृष्ण अष्ठमी 2 जून	पूर्वाभाद्रपदा कृष्ण नवमी 3 जून	उत्तराभाद्रपदा कृष्ण दशमी 4 जून	रेवती कृष्ण एकादशी 5 जून	अश्विनी कृष्ण एकादशी 6 जून
भरणी कृष्ण द्वादशी 7 जून	कृतिका कृष्ण त्रयोदशी 8 जून	कृतिका कृष्ण चतुर्दशी 9 जून	रोहिणी कृष्ण अमावस्या 10 जून	मृगशिरा शुक्ल प्रतिपदा 11 जून	आर्द्रा शुक्ल द्वितीया 12 जून	पुनर्वसु शुक्ल तृतीया 13 जून
पुष्य शुक्ल चतुर्थी 14 जून	आश्लेषा शुक्ल पंचमी 15 जून	मघा शुक्ल षष्ठी 16 जून	पू॰ फाल्गुनी शुक्ल सप्तमी 17 जून	उ॰ फाल्गुनी शुक्ल अष्ठमी 18 जून	हस्त शुक्ल नवमी 19 जून	चित्रा शुक्ल दशमी 20 जून
स्वाती शुक्ल एकादशी 21 जून	विशाखा शुक्ल द्वादशी 22 जून	अनुराधा शुक्ल त्रयोदशी/चतुर्दशी 23 जून	ज्येष्ठा शुक्ल पूर्णिमा 24 जून			

अंध-विश्वास

-आर्य आनन्द स्वरूप, मुजफ्फरनगर

कक्षा 5-6 का विद्यार्थी रहा हूँगा, जब अध्यापक श्री ब्रह्म स्वरूप शार्म ने अपने साथ घटी एक सत्य घटना कक्षा में सुनाई थी।

अध्यापक महोदय गढ़वाल क्षेत्र के रहने वाले थे और गवर्नमेंट मॉडल स्कूल, मुजफ्फरनगर जो मिडिल कक्षा अर्थात् सातवीं कक्षा तक के लिए था में पढ़ाते थे। अब तो स्कूल का सारा कलेवर ही बदल गया है। उस समय यह पक्की दिवारों पर खपरैलों के नीचे चलता था। नीचे लम्बे पटौटे बिछे होते थे और आगे छोट-छोटे डैस्क, पुस्तक आदि रखने के लिए होते थे। समय था 1948 ई. का। एक बार अध्यापक जी छुट्टी में घर जा रहे थे। किसी कारणवश उन्हें स्कूल और फिर घर से निकलने में देर हो गई। अकेले रहते थे। पत्नी पहाड़ पर ही गाँव में रहते थी। अगले दिन कोई पारिवारिक विवाह था जिसमें सम्मलित होना आवश्यक था और इसी उपलक्ष्य में छुट्टी ली गई थी। संयोगवश उस दिन जिस बस से उन्हें जाना था, उसे भी बस अड्डे से निकलने में कुछ देरी हो गई। अध्यापक जी परेशान थे देरी के कारण क्योंकि निश्चित स्थान पर बस से उतरकर उन्हें अपने गांव जाने के लिए दो-तीन कोस पैदल ही चलना था। आगे न किसी सवारी का प्रबंध था और न किसी संगी-साथी का। देश अभी अभी स्वतंत्र हुआ था, मैदानी क्षेत्रों में ही सड़कों की व्यवस्था समुचित नहीं थी, ग्रामीण क्षेत्रों में तो कच्चे रास्ते हुआ करते थे, फिर पहाड़ की तो बात ही क्या। सड़क-रास्ते के नाम पर पगडंडी हुआ करती थी।

ऐसे में अध्यापक जी जब गंतव्य स्थान पर उतरे तो रात हो गई थी। चारों ओर अंधेरी रात का अंधेरा पसरा हुआ, श्मशान जैसी निःशब्दता। पहाड़ों पर वैसे भी सूर्य छिपते ही शीघ्र ही अंधेरा घिर जाता है। बस उतारकर आगे बढ़ गई और अध्यापक महोदय कुछ पलों के लिए निश्चित खड़े रहे। क्या करें? क्या होगा? एक घंटे की यात्रा तो थी ही। पहाड़-जंगल में दिन में भी हिंसक पशुओं का भय रहता है, यदा-कदा हिंसक पशुओं द्वारा आक्रमण की घटनायें भी होती रहती हैं। बहुत रात नहीं गई थी परन्तु अंधेरा और जंगली-पहाड़ी रास्ते को अकेले पार करना कुंठा बना देती है। एक अन्य कारण जो अधिक डरावना था वह था रास्ते में पड़ने वाला बाग। इस बाग के बारे में प्रसिद्ध था कि इसमें रात में भूत आते हैं। पहाड़ पर इस प्रकार के अंध-विश्वास का बहुत प्रभाव था, आज भी जो पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है। अध्यापक जी धूम्रपान नहीं करते थे इससे माचिस की डिब्बी भी उन के पास नहीं थी जिससे किसी प्रकार के भय के उपस्थित होने पर कुछ प्रकाश का ही सहारा मिल पाता।

मरता क्या न करता। हनुमान-चालीसा का पाठ धीरे-धीरे करते हुये लाचारी मे चल पड़े, तेज पग बढ़ाते हुये, रास्ता तो पार करना ही था। एक कोस चलने पर जब वे कथित भूतिया बाग के पास पहुँचे तो सामने बाग में आग जलती दिखाई दी और उसके चारों और कुछ परछाईयाँ। बस अब क्या था आगे कुआँ और पीछे खाई। लौट कर कहाँ जा सकते थे और आगे तो साक्षात् मौत ही खड़ी थी। खड़े के खड़े रह गये। बुद्धि जड़ हो गई। कुछ सोच नहीं पा रहे थे, बस केवल हनुमान चालीसा जितना याद था, दोहरा रहे थे। बाग में आग कभी तेज हो जाती और कभी कभी बुझ जाती। भूतिया प्रभाव स्पष्ट था। वे कितनी देर किंकर्त्तविमूढ़ बन कर खड़े रहे उन्हें नहीं याद रहा। उन्हें थकान और भय में बैठना भी याद नहीं रहा। बस हनुमान चालीसा अवश्य पढ़ते रहे। हे हनुमान जी आप ही प्राण-दान दे सकते हैं। घर पर छोटे-छोटे बच्चे हैं, बूढ़े माँ-बाप हैं जो कुछ करने में अशक्त हैं, सीधी-सादी अनपढ़ पत्नी है। मेरे बाद तो कुछ भरण-पोषण का सहारा भी नहीं रहेगा। पूरा परिवार बरबाद हो जायेगा। पहाड़ पर थोड़ी सी खेती की भूमि में गुजारा नहीं हो सकता। ये तो ईश्वर कृपा से स्कूल नौकरी मिल गई थी जो गुजारा हो रहा था, अब आगे क्या होगा? उस सुन्न मस्तिष्क की दशा में हनुमान जी को रटते रटते उनके पग बाग की ओर लड़खड़ाते हुये बिना प्रयास, अनचाहे कितने उठे उन्हें पता नहीं चला। तभी आगे की एक लपट तेजी से उठी। कुछ तो वह बाग के कुछ पास आ गये थे और कुछ लपट जोर से उठी थी। उन्हें दो-चार मनुष्य आग पर तापते दिखाई पड़े और साथ ही कुछ भैंसे जैसे पशु भी उस लपट में चमके। उन्हें कुछ ढ़ाढ़स बंधा और वह तेजी से बढ़ कर बाग में पहुँच गये। बाग में पहाड़ी घुमक्कड़ चरवाहों ने डेरा डाला हुआ था और वे ही आग जला सर्दी में तापने और जंगली जानवरों से रक्षा में प्रयत्नशील थे। पास ही उन्हें दूर से चमकने वाले पशु, उनकी गाय-भैसें थी। ये लोग पहाड़ों पर गाय-भैंस पाल कर दूध बेचकर जीवन-निर्वाह करते हैं और घास-चारे की तलाश तथा सर्दी-गर्मी के अनुसार जगह-जगह अपने स्थान बदलते रहते हैं। ये खाना-बदोश कहे जाते हैं।

अध्यापक जी को शरीर में ऐसी गर्मी आई कि उस ठंडक में भी दो पल आग पर सेकने की आवश्यकता ने समझी और तेजी से पग बड़ाते हुई घर जाकर ही दम लिया। घर में सभी ने उन्हें ऐसे समय पर पहुँचने पर आश्चर्य किया।

एक बात अभी बाकी है। उस आग का रहस्य, कभी तेज होना और कभी बुझना अर्थात् भूतिया लक्षण होना। हंसना नहीं। वास्तव में तापने के लिए उन खानाबदोशों ने जंगल व आस-पास के खेतों से सूखी भूसी-पत्ते आदि इकठ्ठे कर रखे थे। जब जलती आग पर भूसी और पत्ते आदि को डालते तो आग दब जाती, बुझी हुई लगती तथा कुछ पलों में ही तेजी से जल उठती और भूतियां करिश्मा बना देती।

अध्यापक महोदय ने बताया कि उस रात यदि उनके पास वापस लौटने का कोई सहारा होता तो निश्चित रूप से वे लौट आते और जीवन भर के लिए भूतों का अस्तित्व उनके लिए स्थायी हो जाता। आज 73 वर्षों के बाद भी उन अध्यापक श्री ब्रह्मस्वरूप शर्मा जी का संस्मरण याद आ जाता है और सोचना-चाहता हूँ कि इस प्रकार के अंध-विश्वासों से घिरे समाज को कैसे मुक्ति मिले? इस सबसे मुक्ति का एक ही रास्ता है वेद-ज्ञान। जिसे ढूंढ़ना, पाना वर्तमान समय में अत्यंत कठिन है। कुछ तो हमारे पाठ्यक्रमों में इस ज्ञान का न होना, दूसरे मत-मतांतरों और स्वार्थ-सिद्धि के जाल में बहुजन का फंसा होना।

शास्त्र कहता है जो वस्तु जैसी है उसे वैसा ही जानना और वैसा ही उसका प्रयोग करना ज्ञान कहलाता है और इस का उल्टा अज्ञान। ज्ञान सुख का कारण होता है और अज्ञान दु:ख का। तब क्यों अज्ञान में फंस कर हम ज्ञान से दूर रह कर दु:ख भोगें। ज्ञान आपसे दूर नहीं है। बस केवल इच्छामात्र की आवश्यकता है। फोन उठाइये और मोबाइल नम्बर 9760310622 पर मिलाइये।

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय।

सहज सरल सांख्य-१२

- आचार्य सतीश, दिल्ली

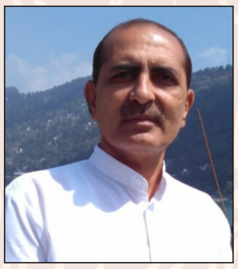

एक ओर जहाँ इन्द्रियाँ अहंकार का परिणाम हैं वहीं दूसरी ओर पाँच सूक्ष्म भूत भी इसी का परिणाम हैं। इन्हें ही तन्मात्र कहा गया है। ये ही समस्त स्थूल जगत् के कारणीभूत तत्त्व हैं। इनमें अभी तक जगत् की दृश्यमान विशेषताओं का उदय नहीं हुआ होता है, अतः इन्हें अविशेष भी कहा गया है। स्थूल जगत में अनेक तत्त्व हैं जैसे जल, सोना, पारा, लोहा आदि। जब इनके कारण ऐसी अवस्था तक नहीं पहुँच पाते जिसमें इन्हें सोना, लोहा आदि की विशेषता आ जाए उस स्थिति को तन्मात्र कहा जाता है। पाँच प्रकार के विशेष कार्यों के आधार पर इनकी संख्या पाँच निर्धारित है- गंधतन्मात्र, रसतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, शब्दतन्मात्र व रूपतन्मात्र। यही तन्मात्र कार्योन्मुख होते हैं तो इन्हें पृथ्वी जल, वायु, आकाश व अग्नि का नाम दिया जाता है।

अब यही अविशेष (तन्मात्र) सूक्ष्म शरीर का भाग है, यही सूक्ष्म शरीर का आश्रय भाग है और जब यही स्थूलीभूत होते हैं तो स्थूल शरीर का निर्माण आरम्भ होता है।

जीवात्माओं का देहान्तर इसी सूक्ष्म शरीर के साथ होता है, स्थूल शरीर तो छूट जाता है लेकिन यह सूक्ष्मशरीर देहान्तर में साथ-रहता है।

तो आत्मा का यह संसरण कब तक चलता रहता है?

आत्मा का इस सूक्ष्म शरीर के साथ देहान्तर उसके विवेक ज्ञान होने तक चलता रहता है। विवेकज्ञान की प्राप्ति पर यह सूक्ष्म शरीर उससे छूट जाता है। उससे पहले नहीं।

तो फिर अविवेक की आत्माओं का संसरण कब तक रहता है?

जब तक विवेक ज्ञान नहीं होता तब तक उपभोग बना रहेगा, जब तक उपभोग बना रहेगा तब तक यह चलता रहेगा और सर्गकाल पर्यन्त बना रहता है।

स्थूल शरीर अधिकतर माता-पिता के संयोग से उत्पन्न होता है। सूक्ष्म शरीर की नैसर्गिक उत्पत्ति होती है और सर्गकाल पर्यन्त या विवेक ज्ञान होने तक वही रहता है तथा स्थूल शरीर बदलता रहता है।

सर्गकाल में आत्मा का दोनों शरीरों के साथ सम्बन्ध रहता है तो सुख, दुःख आदि का भोग, इनमें किससे होता है।

आत्मा के भोगकाल में दोनों शरीरों का विद्यमान रहना आवश्यक है, क्योंकि यदि सूक्ष्म शरीर से ही भोग होता तो स्थूल शरीर की आवश्यकता ही नहीं थी और स्थूल से पहले सूक्ष्म का होना तो निश्चित है ही अर्थात् सूक्ष्म के बिना स्थूल का अस्तित्व नहीं।

तो सूक्ष्म शरीर के कितने घटक हैं?

यहाँ सांख्यकार के अनुसार तेरह करण (ग्यारह इन्द्रियाँ, महत् और अहंकार) तथा पाँच तन्मात्राओं को मिलाकर सूक्ष्म शरीर है। यदि अहंकार और बुद्धि को एक मान लिया जाए तो सत्रह घटक है लेकिन वस्तुस्थिति नहीं बदलती। इनमें करण आश्रित हैं और तन्मात्र आश्रय है। आश्रय भाग को कारण शरीर भी कहा गया है।

सब आत्माओं के साथ करण एक जैसे होने पर भी व्यक्तियों में भेद क्यों देखा जाता है?

लोक में जो व्यक्तिगत भेद देखा जाता है वह आत्मा के विभिन्न शुभाशुभ कार्मों की विभिन्नता के कारण है।

शरीर तो स्थूल रूप में देखा जाता है, फिर आश्रित करणों व आश्रयभूत तन्मात्राओं के समुदाय को शरीर क्यों कहा गया है?

सूक्ष्मदेह का जो कि आत्मा के अधिष्ठान है का वास्तविक उपयोग आत्मा के लिए सुख दुःखादि समस्त भोगों का प्रस्तुत करना तथा समाधि लाभ द्वारा तत्वज्ञान का सम्पादन है। लेकिन यह सब स्थूल शरीर के साथ सम्बन्ध हुए बिना सम्पन्न नहीं हो पाता। इस आधार पर स्थूल के साथ सूक्ष्म को भी शरीर कहा गया है।

आत्मा को तेरह करणों का उपयोग भोग प्रस्तुत करने में है। बाह्य उपयोग स्थूल भूतों का है, फिर तन्मात्राओं को सूक्ष्म शरीर में क्यों समाविष्ट किया गया?

जैसे छाया बिना आश्रय नहीं रह सकती, चित्र की रचना बिना आश्रय के नहीं होती है इसी प्रकार आत्मा के लिए समस्त भोगों को प्रस्तुत करने वाले करणों (जो कि बिना आश्रय के नहीं रह सकते) के आश्रय रूप में तन्मात्राओं का स्पष्ट उपयोग है और सूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत सम्मिलित हैं।

समस्त भोगों को प्रस्तुत करन वाले करणों को ही भोक्ता क्यों न मान लिया जाए, आत्मा की क्या आवश्यकता है?

समस्त करण मूर्त हैं, जो मूर्त है वह संघात रूप होता है। संघात भोक्ता नहीं, परार्थ होता है। इसलिए करण भोगों को प्रस्तुत करने का सामर्थ्य रखते हुए भी मूर्त व संघात रूप होने के कारण भोक्ता नहीं हो सकते। जैसे सूर्य प्रकाशस्वरूप तथा पदार्थों को प्रकाशित करने का सामर्थ्य रखते भी मूर्त तथा अचेतन होने कारण परार्थ होता है, भोक्ता नहीं।

मन एक ऐसा करण है जिसका प्रत्येक बाह्य इन्द्रिय के साथ सम्बन्ध होता है, ऐसी स्थिति में मन का परिमाण क्या होना चाहिए?

जैसा पीछे बताया गया है कि इन्द्रियों की अपने विषय में प्रवृति क्रमिक होती है, अक्रमिक नहीं, इसलिए मन को शास्त्रकार ने मन को अणु परिमाण बताया है। साथ ही मन कार्यतत्व है और उसको अन्नमय कहा गया है, हालांकि मन किसी भूत तत्व का विकार नहीं, वह तो अहंकार का कार्य है।

अब प्रश्न किया गया कि अचेतन करणों का एक देह से दूसरे देह में संसरण क्यों होता रहता है?

आत्मा के प्रयोजन हैं भोग और अपवर्ग, उन्हीं को सम्पन्न करने के लिए समस्त करण हैं। अतः आत्मा के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए अनादि काल से करणों की सतत् गति आत्मा के साथ देह से देहान्तर में होती रहती है।

क्रमश ....

आओ यज्ञ करें!

अमावस्या	11 मई	दिन-मंगलवार	मास-वैशाख	ऋतु-ग्रीष्म	नक्षत्र-भरणी
पूर्णिमा	26 मई	दिन-बुधवार	मास-वैशाख	ऋतु-ग्रीष्म	नक्षत्र-अनुराधा
अमावस्या	10 जून	दिन-गुरुवार	मास-ज्येष्ठ	ऋतु-ग्रीष्म	नक्षत्र-रोहिणी
पूर्णिमा	24 जून	दिन-गुरुवार	मास-ज्येष्ठ	ऋतु-ग्रीष्म	नक्षत्र-ज्येष्ठा

गृहस्थ सम्बन्ध : भाग-२२

- आचार्य संजीव आर्य, मु०नगर

दान लेना जिसका कर्तव्य हो उसके क्या कहने? उसके तो वारे न्यारे हो ही जाते हैं। यदि दान लेकर उसे हजम भी कर जावे और जनता का पूज्य भी बना रहे तो क्या कहने- तभी तो दान को लेकर भट्टों ने क्या-क्या नहीं किया, खून प्रशस्तियाँ गाई गई हैं-यथा-

दानेन भूतानि वशी भवन्ति दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्।
परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानैः दानं हि सर्वे व्यसनानि हन्ति॥

(दान से जीव वश में हो जाते हैं, दान से वैर भी नाश को प्राप्त हो जाते हैं, दान के द्वारा दूसरों से भाईचारा हो जाता है और दान ही सभी व्यसनों को मार देता है।

शतेषु जायते शूरः, सहस्रेषु च पण्डितः।
वक्ता दश सहस्रेषु, दाता भवति वा न वा॥

सैंकडों में कोई एक वीर होता है, हजारों में कोई एक विद्वान होता है, दश हजार में से कोई एक वक्ता बन पाता है और दाता (दानदाता) तो उससे भी दुर्लभ है।

दानं ख्यातिकरं सदा हितकरं संसार सौख्यकरम्,
नृणां प्रीतिकरं गुणाकरकरं लक्ष्मीकरं किङ्करम्।
स्वर्गावासकरं गतिक्षयकरं निर्वाणसम्पत्करम्,
वर्णायुर्बल बुद्धि वर्धनकरं दानं प्रदेयं बुधैः॥

दान ख्याति बढ़ाने वाला, सदा हित करने वाला, संसार सुखी करने वाला, प्रेम उत्पन्न करने वाला, गुणों को लाने वाला, लक्ष्मीदायक, सेवक स्वरूप, स्वर्ग वाला, दुर्गति का नाश करने वाला, मोक्षरूप सम्पत्ति देने वाला, आयु बल और बुद्धि का दाता है। इसलिए बुद्धिमान लोगों का दान करना चाहिए।

ऐसी अनेकों प्रशस्तियाँ दान और दान-दाताओं के लिए की गई हैं। तथाकथित् ब्राह्मण कहलाने वाले लोगों ने इसे व्यवसाय के रूप में ही धारण किया है। लोग यह भी कहते पाये जाते हैं- किसी का बूढ़ा मरे या जवान हमें हत्या से काम। अर्थात् **येन क्रेन प्रकारेण** प्रयोजन सिद्धि ही इनका उद्देश्य रहता है और इन जैसों के कारण सत्य-निष्ठ ब्राह्मण अपकीर्ती को प्राप्त होकर दुःखी होते हैं। उनमें से अनेकों तो स्वकर्तव्य (अध्यापन और यज्ञ संस्कार आदि कराना) से विरत हो जाते हैं। इसीलिए आज सनातन संस्कृति के योग्य अध्यापकों एवं पुरोहितों की उपलब्धता प्रायः अत्यन्त न्यून हो गई है।

दान लेना और दान देना ऋषियों ने भी आवश्यक माना है और स्पष्ट निर्देश किया है-

ये के चास्मच्छ्रेयांसो ब्रह्मणास्तेषां त्वयासेवनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्राद्धया देयम। श्रिया देयम। ह्रया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्॥

अर्थात्:- जो कोई हमारे मध्य में उत्तम विद्वान्, धर्मात्मा ब्रह्मण हैं उन्हीं के समीप बैठ और उन्हीं का विश्वास किया कर। श्रद्धा से देना, अश्रद्धा से देना, शोभा से देना, लज्जा से देना, भय से देना और प्रतिज्ञा से भी देना चाहिए। यह है सनातन संस्कृति की सुन्दरता उसका सन्तुलन, जहाँ एक ओर ब्रह्मण को दान ग्रहण करने की अनुमति देकर उसे सचेत किया कि दान स्वीकार करना तेरा कर्तव्य तो है किन्तु इस दान से आजीविका चलाना अनुचित ना भी हो परन्तु श्रेयस्कर नहीं है। क्योंकि दान जब मिलने लगता है तो ग्रहण करने वाले का उस पर आश्रित हो जाना अधिक कठिन्यता का कार्य नहीं है। अतः उसे हतोत्साहित करना आवश्यक है और सनातन संस्कृति के रक्षक आचार्यों और ऋषि मुनियों ने किया भी। यथा-

प्रतिग्रहायाजनाद्वा तथैवाध्यापनादपि।
प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रेत्य विप्रस्य गार्हितः॥ और-
शिलोञ्छमप्याददीत विप्रोजीवन्यतस्ततः।
प्रतिग्रहाच्छिलः श्रेयांस्ततोऽप्युञ्छः प्रशस्यते॥

अग्राह्य दान लेने, यज्ञ कराने, अध्यापन में से दान लेना सबसे निकृष्ट जीविका है यह ब्राह्मण के लिए परलोक में भी दुःख का कारण माना गया है। और जीविका में असमर्थ होने पर ब्राह्मण जहाँ कहीं से भी शिल (खेत में फसल उठाने के बाद पड़ी रह जाने वाली बालें) और उञ्छ (बालें बीन लेने के बाद पडे रह जाने वाले दाने) से अपनी आजीविका कर ले क्योंकि प्रतिग्रह - अत्यन्त धर्मार्थ दान के ग्रहण से वह आजीविका श्रेष्ठ है।

एक ओर दान लेना ब्राह्मण का कर्तव्य है, दाता को देना कर्तव्य है साथ ही उसे देने के लिए प्रोत्साहित भी किया गया है वही दूसरी ओर ब्राह्मण को अपने लिए दान ग्रहण नहीं करने की प्रेरणा है। फिर दान को ग्रहण करके ब्राह्मण करेगा क्या? इसका उत्तर ऋषि दयानन्द के ही वाक्यों में देते हैं- "वेद विद्या, वेदोक्त धर्म का प्रचार, अनाथ पालन, वेदोक्त धर्मोपदेश की प्रवृति के लिए चाहे जितना धन प्रदान करें, बहुत अच्छी बात हैं।"

यदि हम दान देने से पूर्व उपरोक्त ऋषि वाक्य को स्मरण कर लें तो हमारा दान उचित पात्र व स्थान पर ही होगा। तब ग्रहस्थों के द्वारा प्रदत्त यह दान इस सनातन परम्परा को पुनः तीव्र गति पर आरुढ़ कर देगा। ब्राह्मण कुल के शेष गुणों शम, दम, शौच, क्षान्ति, आर्जव, ज्ञान और विज्ञान पर अवसरानुकूल कभी फिर लिखेंगे किन्तु आत्तिक्य पर चर्चा अनिवार्य है अतः विचारते हैं।

ब्रह्माण कुल में अन्य गुणों के साथ-साथ अत्यन्त आवश्यक एक गुण है आत्तिक्य अर्थात् परमेश्वर, वेद, धर्म, परलोक, परजन्म, पूर्वजन्म, कर्मफल और मुक्ति से विमुख कभी नहीं होना। एक ब्राह्मण परमेश्वर को ठीक-ठीक जानने वाला, मानने वाला एवं ठीक-ठीक विधि से उसकी उपासना करने वाला होना चाहिए। यदि वह ईश्वर के नाम पर भ्रम उत्पन्न कर लोगों को डराता है तो ऐसा व्यक्ति शूद्र होने के भी योग्य नहीं ब्राह्मण की तो बात ही क्या? जो परमेश्वर को ठीक-ठीक जानता है मानता है वह उसकी वाणी वेद से कभी भी विमुख नहीं हो सकता है और उसके स्थान पर जाली ग्रन्थों का प्रचार तो वह कभी भी नहीं करेगा। धर्म जिसकी परिभाषा पूर्व लेख में दी जा चुकी, जिसका स्वरूप वेद की आज्ञा का पालन करना है एक आस्तिक कभी भी उससे विपरीत आचरण नहीं कर सकता। उस पर एक ब्राह्मण का यह विशेष कर्तव्य है कि वह वेद की आज्ञा के पालन के लिए राजा और प्रजा सबको प्रेरणा किया करे। परलोक अर्थात् उसका लक्ष्य और प्रयत्न पर लोक की प्राप्ति पूर्वक परम आनन्द की प्राप्ति के लिए हो जिसके द्वारा मुक्ति के लिए हमारा प्रयत्न होता रहे और अन्य भी उससे प्रेरित हो सकें। पूर्वापर जन्म और कर्मफल पर विश्वास करना और समाज के लोगों को ये व्यवस्था समझाना भी उसी की जिम्मेदारी है। हमारे आचरण सुधरना आत्तिक्य वर बहु आश्रित है व्यक्तिशः आचरण कर सुधारा ही गृहस्थ सम्बन्धों को भी सुदृढ़ व अति उचित बनाने में बहुत सहयोग करेगा।

क्रमश ....

आर्योद्देश्यरत्नमाला

प्रणेता - ऋषि दयानन्द
व्याख्याता - आचार्य परमदेव मीमांसक

१. ईश्वर-जिस के गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरूप सत्य ही हैं, जो केवल चेतनमात्र वस्तु है तथा एक, अद्वितीय, सर्वशक्तिमान्, निराकार, सर्वत्र व्यापक, अनादि और अनन्त आदि सत्यगुण वाला है और जिस का स्वभाव अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु और अजन्मादि है। जिसका कर्म जगत् की उत्पत्ति, पालन और विनाश करना तथा सब जीवों को पाप, पुण्य के फल ठीक ठीक पहुँचाना है। उसको **ईश्वर** कहते हैं।।

व्याख्या-ईश्वर के सत्यगुण, सत्यकर्म, सत्य-स्वभाव और स्वरूप सत्य ही हैं अर्थात् ईश्वर के गुण कभी नहीं बदलते हैं। कर्म उद्देश्य को पूर्ण करने वाले होते हैं, स्वभाव बदलता नहीं है और स्वरूप कभी परिवर्तित नहीं होता है। वह केवल चेतनमात्र वस्तु है, जीव भी चेतन है परन्तु वह प्रकृति के साथ संयुक्त होता है, ईश्वर इस प्रकार से भी कभी संयुक्त नहीं होता है। वह एक है, अद्वितीय है।

ईश्वर के सत्य गुण-अद्वितीय, सर्वशक्तिमान्, निराकार, सर्वत्र व्यापक, अनादि तथा अनन्त आदि हैं।

ईश्वर के सत्य कर्म-जगत् की उत्पत्ति, पालन, विनाश और सभी जीवों को पाप-पुण्य के फल ठीक-ठीक पहुँचाना है।

ईश्वर के सत्य स्वभाव-अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु और अजन्मा आदि है।

ईश्वर का स्वरूप-चेतन मात्र वस्तु तथा ईश्वर का मुख्य नाम **'ओम्'** है।।

२. धर्म-जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा का यथावत् पालन और पक्षपात रहित न्याय, सर्वहित करना है। जो कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सुपरीक्षित और वेदोक्त होने से सब मनुष्यों के लिये यही एक धर्म मानना योग्य है; उस को धर्म कहते हैं।

व्याख्या-**जो पक्षपात रहित, न्यायाचरण, सत्यभाषणादियुक्त ईश्वराज्ञा, वेदों से अविरुद्ध है उसको धर्म मानता हूँ।** (सत्यार्थप्रकाश-स्व० प्रकाश)

ईश्वर की आज्ञा अर्थात् वेदों की आज्ञा का पालन ठीक-ठीक करना तथा सब के हित के लिए पक्षपात रहित न्याय और सत्यभाषणादि करना धर्म है। यह प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सुपरीक्षित होने से ग्रहण करने के योग्य होता है।।

३. अधर्म-जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा को छोड़कर और पक्षपात सहित अन्यायी होके बिना परीक्षा करके अपना ही हित करना है। जिसमें अविद्या, हठ, अभिमान, क्रूरतादि दोषयुक्त होने के कारण वेद-विद्या से विरुद्ध है, इसलिये यह अधर्म सब मनुष्यों को छोड़ने के योग्य है, इससे यह अधर्म है।।

व्याख्या-**जो पक्षपातसहित, अन्यायाचरण, मिथ्याभाषणादि, ईश्वराज्ञाभंग, वेदविरुद्ध है, उस को 'अधर्म' मानता हूँ।** (सत्यार्थप्रकाश-स्व० प्रकाश)

ईश्वर की आज्ञा का भङ्ग करना अर्थात् वेद की आज्ञा का उल्लंघन करना अधर्म है; अपने हित के लिये पक्षपात करते हुए अन्याय का आचरण तथा मिथ्याभाषणादि करना **अधर्म** है।।

४. पुण्य-जिसका स्वरूप विद्यादि शुभगुणों का दान और सत्यभाषणादि सत्याचार का करना है; उसको **पुण्य** कहते हैं।

व्याख्या-विद्या, बल प्राप्ति के उपाय, धनागम के उपाय आदि जो शुभ गुण हैं, इसका दान जिस से दूसरे भी विद्वान्, बलवान् और धनवान् बन सकें, पुण्य कार्य है तथा सत्यभाषण, बल से रक्षा करना, भूख-प्यास-कष्ट को दूर करना आदि जो सत्याचार है, **पुण्य** कहलाता है।।

५. पाप-जो पुण्य से उल्टा और मिथ्याभाषणादि करना है; उसको **पाप** कहते हैं।।

व्याख्या-अविद्या फैलाना, दूसरों को सताना, धन का हरण करना आदि पाप हैं तथा जो मिथ्याभाषण, कपट, कुटिलता आदि दुष्टाचार हैं ये भी पाप हैं, क्योंकि इन सभी से दूसरों को तथा स्वयं को दु:ख ही मिलता है।।

६. सत्यभाषण-जैसा कुछ अपने आत्मा में हो और असम्भवादि दोषों से रहित करके सदा वैसा सत्य ही बोले; उस को **'सत्यभाषण'** कहते हैं।

व्याख्या-जितना हमें ज्ञान है, उस के अनुसार ही बोलना सत्य है परन्तु उसे प्रमाणादि से स्वयं विचार भी कर लें कि यह असम्भव आदि दोषों से युक्त न हो। जैसे किसी ने बताया कि आदमी के सींग होते हैं तो ज्ञान तो हमें हो गया परन्तु अब परीक्षा करें-आदमियों के सींग प्रत्यक्ष तो दीखते नहीं, अत: प्रत्यक्ष के अभाव में अनुमान नहीं, अनुमान के अभाव में उपमान भी नहीं, शब्दमात्र है, अत: विचारें कि यह शब्द आप्त का है अथवा अनाप्त का, यदि आप्त का नहीं है तो मानने योग्य नहीं, ऐतिह्य अर्थात् आप्तों के लिखे इतिहास में भी नहीं है, अत: इन प्रमाणों के ना होने से अर्थापत्ति भी नहीं हो सकती, इससे यह निर्णय किया कि यह सम्भव नहीं है। इसलिये यह वाक्यार्थ कि आदमी के सींग होते हैं, ग्राह्य नहीं है, असत्य है इसे न मानना सत्यज्ञान और न कहना ही **सत्यभाषण** है।।

७. मिथ्याभाषण-जो कि सत्यभाषण अर्थात् सत्य बोलने से विरुद्ध है; उसको **असत्यभाषण** कहते हैं।।

व्याख्या-स्वार्थ, प्रमाणादि से परीक्षा न कर पाने की क्षमता, कुटिलता आदि के कारण जैसे स्वयं को ज्ञान है उससे विपरीत बोलना। जैसे- दुकानदार ने १०रु० में वस्तु खरीदी परन्तु ग्राहक से स्वार्थहित कहते हैं कि यह वस्तु तो खरीदी ही हमने १५ रु० की है और देते हैं १३ रु० की तो यह मिथ्याभाषण हुआ परन्तु यदि इस प्रकार हो कि यह वस्तु तो १० रु० की है, ३ रु० लाभ लेकर १३ रु० की दूँगा तो यह सत्यभाषण होगा और ऐसा व्यवहार सत्यव्यवहार कहलायेगा।।

क्रमश ....

देश हित में न जिसने कुछ भी किया।

-आर्य आनन्द स्वरूप, मु०नगर

देश हित में न जिसने कुछ भी किया।
साल सौ जी के भी क्या खाक जिया।।
धन्य वे शहीद हुये हंसते हंसते,
आज रोते हम याद उन्हें करते।
वार हर एक अपने ही सीने पे लिया।।
देश हित में न जिसने कुछ भी किया।
साल सौ जी के भी क्या खाक जिया।।
कैसे कैसे हुये बांकुरे नर,
बैठ जाता देख शत्रु सीने में डर।
अपने जख्मों को उन्होंने खुद ही सिया।
देश हित में न जिसने कुछ भी किया।
साल सौ जी के भी क्या खाक जिया।।
देश जाति ने जब भी पुकारा उनको
हो निडर दौड़ पड़े हर मदद को।
और हम हैं कि उन्हें कुछ भी न दिया।
देश हित में न जिसने कुछ भी किया।
साल सौ जी के भी क्या खाक जिया।।
नौजवानो उठों वही पुकार सुनों,
बनके कमजर्फ न सिर को धुनो।
कर्ज भारी है, दूध जिसका पिया।
देश हित में न जिसने कुछ भी किया।
साल सौ जी के भी क्या खाक जिया।।
देश जाति पे मुसीबत भारी,
इन्हें मिटाने की सजिशें जारी
अब भी क्या बेहया तुम्हारा हिया।
देश हित में न जिसने कुछ भी किया।
साल सौ जी के भी क्या खाक जिया।।
उठो कि एक बनो देश उठाने के लिए,
देश दुश्मन को नया पाठ पढ़ाने के लिए।
बुझ न पाये ये एकता का दिया
देश हित में न जिसने कुछ भी किया।
साल सौ जी के भी क्या खाक जिया।।

आज का प्रश्न

आचार्य धर्मपाल, कुरुक्षेत्र

प्रश्न :- क्या अयोध्या में राम मंदिर उचित या अनुचित है?

उत्तर :- राम हमारे पूजनीय हैं, हमारे आर्य पूर्वज हैं। निश्चित रूप से राम मंदिर बनना ही चाहिए। मुझे नहीं लगता कोई आर्य या हिंदू राम मंदिर के विरोध में हो और यदि कोई हिंदू या आर्य विरोध में है तो निश्चित रूप से वह अज्ञानी है, अभागा है, मंदबुद्धि है। परंतु राम मंदिर निर्माण में हिंदू और आर्य की विचारधारा में अंतर है। जिस दृष्टि से आर्य राम मंदिर के निर्माण की दूरदर्शिता देखता है हिंदू उस दृष्टि के आसपास भी नहीं है।

आर्य इतना चिंतनशील है कि राम मंदिर का निर्माण चाहते हुए भी भयभीत है। हिंदू स्थूल दृष्टि रखता है वह मंदिर से और राममूर्ति से राम की विचारधारा की रक्षा चाहता है जो संभव नहीं है।

जिस प्रकार से सारे देश का धन वैभव सोमनाथ पर इकट्ठा हुआ और लूटने के लिए गजनवी को स्थान-स्थान नहीं भटकना पड़ा। उसी भूल को आज हिंदू भाई दोहरा रहे हैं, सारे देश का तिनका तिनका जोड़ कर हजारों करोड़ रुपयों का मंदिर बनाएंगे, फिर कोई लुटेरा लूट ले जाएगा और मूर्ति पूजा से जो अकर्मण्यता बढ़ेगी उससे देश में और दरिद्रता भी बढ़ेगी।

इसका तात्पर्य तो यही हुआ कि आर्य अप्रत्यक्ष रूप से राम मंदिर नहीं चाहता नहीं! ऐसा विचार नहीं है आर्य भी चाहते हैं की राम मंदिर का निर्माण हो, परंतु आर्यों का उद्देश्य राम मंदिर के निर्माण के द्वारा राम की विचारधारा की रक्षा का है। राम की विचारधारा की रक्षा तब होगी जब उस स्थान से विश्वामित्र के जीवन पर रिसर्च हो, ऐसे विश्वामित्र तैयार हों जो श्रीराम के चरित्रों का निर्माण करके रावण जैसी आसुरी ताकतों का विनाश करें।

कोई कहे यह कार्य सेना का है तो ध्यान दें कि सेना राष्ट्र की रक्षा में तत्पर रहे बहुत अच्छी बात है परंतु विश्वामित्र राम के चरित्रों द्वारा व्यक्ति से व्यक्ति को जोड़ने वाली वैदिक संस्कृति सुदृढ़ करने वाले हों। अंदर से राष्ट्र में विघटनकारी ताकते हैं अर्थात् जो हमें आपस में लड़वाने वाली ताकते हैं जैसे आजकल के संत धर्म के नाम पर लड़वाते हैं और नेतागण जातियों के नाम पर लड़वाते हैं। उनका विनाश भी होना अवश्य है। वो तब होगा जब अयोध्या में राम मंदिर में विश्वामित्र जैसे महा पांडित्यपूर्ण और राम जैसे दुर्धष योद्धाओं के चरित्रों पर गहराई से रिसर्च होगी।

यह हिंदू और आर्यों को आपसी दोषारोपण छोड़कर मिल बैठकर मंथन करना पड़ेगा। आर्यों को हिंदुओं की ताकत चाहिए और हिंदुओं को आर्यों से दूरदर्शिता की दिव्य दृष्टि लेनी ही चाहिए तभी हम दोनों मिलकर अपने पूर्वज श्रीराम के विचारधारा की रक्षा कर पाएंगे।

संध्या काल

वैशाख-मास, ग्रीष्म-ऋतु, कलि-5122, वि. 2078
(28 अप्रैल 2021 से 26 मई 2021)
प्रातः कालः 5 बजकर 30 मिनट से (5.30 A.M.)
सांय कालः 7 बजकर 00 मिनट से (7.00 P.M.)

ज्येष्ठ-मास, ग्रीष्म-ऋतु, कलि-5122, वि. 2078
(27 मई 2021 से 24 जून 2021)
प्रातः कालः 5 बजकर 15 मिनट से (5.15 A.M.)
सांय कालः 7 बजकर 15 मिनट से (7.15 P.M.)

भारत में पर्यावरणीय चेतना एवं संरक्षण

-सोनू आर्य, हरसौला

प्रत्येक देश की अपनी विशिष्ट संस्कृति होती है जिसमें अनेक तत्व सम्मिलित होते हैं। संस्कृति के कुछ तत्व सम्बन्धित राष्ट्र की राजनीति को न केवल प्रभावित करते हैं अपितु इससे प्रभावित भी होते हैं। इन तत्वों को सामूहिक रूप से हम राजनीतिक संस्कृति कह सकते हैं। लुशियन पाई के अनुसार 'राजनीतिक संस्कृति उन अभिवृत्तियों, विश्वासों तथा मनोभावों का सेट या समुच्चय है, जो राजनीतिक प्रक्रिया को सुव्यवस्था प्रदान करता है।'' चूंकि प्रत्येक राष्ट्र की संस्कृति अपने विशिष्ट व भिन्न भौगोलिक वातावरण में पनपती है, अत: उन में भिन्नता स्वाभाविक है, जो उनकी राजनीतिक संस्कृति की विशिष्टता का कारण है। भारतीय संस्कृति में सहनशीलता, विश्व-परिवार व विश्व शान्ति, अन्य राष्ट्रों पर आक्रमण व आधिपत्य स्थापित न करना, प्राणीमात्र का कल्याण तथा पर्यावरणीय चिंतन आदि तत्व भारतीय राजनीतिक के निर्धारक रहे हैं। इनमें पर्यावरण सम्बन्धी चेतना विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद से वर्तमान पर्यन्त भारतीय राजनीतिक संस्कृति में मौलिक चिंतन रहा है। वर्तमान के यूनिवर्सल ब्रदरहुड को हजारों वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजों ने **वसुधैव कुटुंबकम्** में अभिव्यक्त कर 21 वीं सदी के सस्टेनेबल एंड इंक्लूसिव डेवलपमेंट को **''सर्वे भवंतु सुखिनः, सर्वे संतु निरामया''** के रूप में स्थापित किया। पर्यावरण संरक्षण संबंधी प्रयास वर्तमान में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी हुए किन्तु आधुनिक पर्यावरणीय चिंतन व्यवहारिक कम सैद्धांतिक अधिक है। पर्यावरण सम्मेलनों में उठे उत्तर बनाम दक्षिण विवाद से यह स्पष्ट है, जबकि भारतीय पर्यावरणीय चिंतन न केवल सैद्धांतिक अपितु व्यवहारिक भी है। वेद व महाकाव्यों के उदाहरणों से यह स्पष्ट है।

वैदिक काल से ही हमने **''माता भूमि पुत्रोंऽहम पृथिव्या''** की भावना से धरती को माता, आकाश को पिता तथा नदियों, वनस्पतियों को जीवनदायिनी देवियों के रूप में देखा क्योंकि अशान्त पृथ्वी व आकाश हमारी अशान्ति का कारण बनते हैं। अत: उक्त सभी हेतु शान्ति प्रार्थना इस प्रकार है- ''(द्यौ) प्रकाशक, (अंतरिक्ष पृथ्वी आदि) अप्रकाशक लोक, जल, औषधि, गेहूं आदि वनस्पति, आम और वटवृक्ष, समस्त देव शान्ति देने वाले हो। ईश्वर और समस्त पदार्थ शान्ति दे, शान्ति शान्तिदायक हो, वह हमें प्राप्त हो। ब्रह्मांड का एक-एक कण, जीव, उल्का, नक्षत्र, ग्रह आदि हमारे परिजन व परिवार हैं। ऐसा ही पर्यावरण संरक्षण एक्ट 1986 की धारा 2ए में वर्णन है ''समस्त भौतिक एवं जैविक तत्व वायु, जल, जैवमंडल, पर्यावरण कहलाता है।'' उक्त पारिवारिक भावना को इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है ''यह हवि स्वाहा समुद्र को मिले, यह स्वाहा अंतरिक्ष जाए, यह स्वाहा सूर्य को प्राप्त हो, यह मित्र वरुण को, यह रात्रि-दिवस को, यह सोम वननस्पतियों को और यह स्वाहा सब दिव्य शक्तियों को।'' इसी प्रकार ''हे माता पृथ्वी! हम औषधि, बीज बोने या निकालने के लिए आपको खोदें तो आपका परिवार घास-फूस, वनस्पति फिर से तीव्र गति से उगे-बढ़े, आपके मर्म को चोट न पहुंचे। भूमि से आत्मीयता भाव वाले पृथ्वीसूक्त को अमेरिकी विद्वान ब्लूमफील्ड ने विश्व की श्रेष्ठ कविता बताया है। ब्राह्मण ग्रंथों में से 33 कोटी (प्रकार) के देवताओं का वर्णन आता है, जिनमें 8 वसु (बसाने वाले) अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा, नक्षत्र को भी देवता (देने वाला) माना गया है। इनसे यथायोग्य व्यवहार अर्थात् सदुपयोग लेने तथा विकृतिकरण से बचाने की आज्ञा हमारे ऋषि मनीषियों ने दी। वेदों में कहा गया है **'' रक्षाये प्रकृतिं पातुं लोका''** अर्थात् प्राणी मात्र के लिए प्रकृति की रक्षा कीजिए। यही भाव 1972 स्टॉकहोम में पर्यावरण पर आयोजित प्रथम अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में दृष्टिगोचर हुआ किन्तु उसका व्यवहारिक पक्ष उतना नहीं जितना भारतीय चिंतन का है।

वैदिक धर्म के मूल में ही प्रकृति एवं पर्यावरण संरक्षण का विचार निहित है जिसमें वृक्षों में भी जीव एवं चेतना को स्वीकार किया गया है। महाभारत में महर्षि भारद्वाज व भृगु का संवाद है। महर्षि भारद्वाज पूछते हैं कि वृक्ष न देखते हैं, न सुनते हैं, न गंध-रस अनुभव करते हैं, न ही उन्हें स्पर्शज्ञान होता है, फिर वह पंचभौतिक व चेतन कैसे हैं? महर्षि भृगु उत्तर देते हैं- ''हे मुने! यद्यपि वृक्ष ठोस जान पड़ते हैं, फिर भी उनमें आकाश है, तभी उनमें नित्य फल-फूल आदि की उत्पत्ति सम्भव है। वृक्ष के अन्दर गर्मी से ही उनके पत्ते, फल-फूल कुम्हलाते, झड़ जाते हैं। अत: उन्हें स्पर्श ज्ञान भी है। वायु, अग्नि, बिजली की कड़क आदि भीषण शब्द होने पर वृक्षों के फल-फूल गिर जाते हैं, अत: वे सुनते भी है। लता वृक्ष को चारों ओर से लपेट ऊपर तक चढ़ जाती है। बिना देखे किसी को अपना मार्ग नहीं मिलता, अत: वे देखते भी हैं। पवित्र-अपवित्र गंध तथा विशिष्ट प्रकार की धूपों की गंध से वृक्ष निरोग होकर फलते-फूलते हैं, अत: वे सूंघते भी हैं। अपनी जड़ से जल पीते, कोई रोग होने पर जड़ में औषधि डालकर उनकी चिकित्सा की जाती है, अत: उनमें रसेंद्रिय भी है। वृक्ष कट जाने पर नया अंकुर उत्पन्न हो जाता है और वे सुख-दुख को अनुभव करते हैं। इससे मैं समझता हूं कि वृक्षों में जीव है, वे अचेतन नहीं है।''

महर्षि चरक लिखते है- प्राणियों की भांति वृक्षों में भी इंद्रिय है, चेतना है। आचार्य उदयन कहते हैं, वृक्षों को भी मानव शरीर के समान निम्न अनुभव निश्चित होते हैं, जीवन-मरण, स्वप्न, जागरण, रोग, औषधि प्रयोग, बीज, सजातीय अनुबंध, अनुकूल वस्तु स्वीकार व प्रतिकूल वस्तु का अस्वीकार। न केवल प्राचीन संस्कृति अपितु आधुनिक काल में भी भारत के महान वनस्पति वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बसु ने यही सिद्ध किया कि चेतना केवल मनुष्य और पशु पक्षियों तक सीमित नहीं है अपितु वृक्षों में भी है। अंतर केवल मात्रा का है।

महर्षि पाराशर द्वारा ''वृक्ष आयुर्वेद'' में किया गया वनस्पतियों का

क्रमश ....

स्वामी व प्रकाशक आचार्य हनुमत्प्रसाद द्वारा सांगोपांगवेद विद्यापीठ, आर्ष गुरुकुल, टटेसर-जौन्ती, दिल्ली-81 से प्रकाशित

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् - समाचार पत्र मे छपे लेखों तथा विचारों से सम्पादक का पूर्णतया सहमत होना आवश्यक नहीं है। क्योंकि अनवधानतावश त्रुटि एवं मतभिन्न होना सम्भव है। सभी न्यायिक विवाद दिल्ली में निपटाये जाएंगे।